पक्षी-परिचय पर आधारित एक विलक्षण औपन्यासिक कृति: तीन खण्डों में

"बनफूल" रचित

डाना

(प्रथम खण्ड)

हिन्दी अनुवाद

जयदीप शेखर

डाना

(प्रथम खण्ड)

पक्षी-परिचय पर आधारित एक विलक्षण औपन्यासिक कृति (3 खण्डों में)

मूल बँगला लेखक

“बनफूल”

हिन्दी अनुवाद

जयदीप शेखर

JAGPRABHA.IN

Bird Photos Credit

Photos of Birds used in the **Annexure-1A** of this book are taken from-

Nature Web: Photos are marked with 'NW'

(contributors: Parag Kokane and Amol Kokane)

Wikimedia: Photos are marked with 'WM'

Satyaki Hosmane: Photos of Indian Paradise Flycathers (both type)

(Photograph #16 and #18)

Translator pays his heartiest gratitude and thanks towards the Photographers and the webpage admins.

-:eBook:-

Dana (Pratham Khand): The Wings (Volume- I)

Hindi translation of a unique Bengali novel based on Bird-Watching published in 3 parts consicutively in the years 1948, 1950 and 1955.

Original Author: "Banaphool" (1899-1979)

(Balai Chand Mukhopadhyay)

Hindi Translator: Jaydeep Das

(Pen Name- Jaydeep Shekhar)

Cover Sketch: Translator

Copyright 2021 © Translator

All rights reserved

Available at: jagprabha.in

***

“बनफूल”

19 जुलाई 1899 - 9 फरवरी 1979

अनुक्रमणिका

अनुक्रमणिका 5
प्रस्तावना 6
भूमिका 8
(प्रथम खण्ड) 13
अध्याय- 1 14
अध्याय- 2 23
अध्याय- 3 37
अध्याय- 4 45
अध्याय- 5 59
अध्याय- 6 67
अध्याय- 7 80
अध्याय- 8 89
अध्याय- 9 104
अध्याय- 10 109
अध्याय- 11 114
परिशिष्ट- 1A: उपन्यास में वर्णित चिड़ियों के छायाचित्र 118
परिशिष्ट- 1B: उपन्यास में वर्णित चिड़ियों की सूची 125
परिशिष्ट- 1C: पक्षी प्रेक्षण / Bird Watching 128

प्रस्तावना

अनुवाद कोई आसान काम नहीं है। न ही कम है इसका उत्तरदायित्व।

ऐसे हमारे बीच आज भी कुछ लोग रह गये हैं, जो अनुवाद को हेय दृष्टि से देखते हैं; सोचते हैं, कोई भी इन्सान इसे आसानी से कर सकता है और चूँकि यह मौलिक कृति या शोध नहीं है, इसलिए इसका कोई खास महत्व भी नहीं है।

बात दरअसल विपरीत है। हमारे रामायण-महाभारत अबुल फजल द्वारा, या उपनिषद शाहजहाँ-सुपुत्र दारा शिकोह द्वारा फारसी भाषा में अनूदित होकर फ्राँस होते हुए अगर यूरोप न पहुँचते, अभिज्ञान शकुन्तलम से लेकर संस्कृत ध्रुपद साहित्यकृतियाँ अगर अनुवाद के माध्यम से नहीं पहुँचती विश्व के कोने-कोने में, अथवा अरस्तू की कृतियाँ विलियम ऑफ मोयेरबेक द्वारा लैटिन में और फिर लैटिन से बायवाटर आदि अनुवादकों के द्वारा अँग्रेजी में अनूदित न होतीं, बेंजामिन जोवेट अगर प्लेटो का अनुवाद नहीं करते अँग्रेजी भाषा में, तो इन किताबों में छिपी सम्पदा से हम अधिकांश विश्ववासी वंचित ही रह जाते आज तक। अतः अनुवाद का कोई विकल्प नहीं है। यह अपने आप में एक स्वतंत्र विधा है।

वास्तव में, किसी सामाजिक, व्यवसायिक अथवा विज्ञान-विषयक शोधपत्र या लेख के अनुवाद और किसी साहित्यिक कृति के अनुवाद में बहुत अन्तर होता है। साहित्य में शब्दों के शब्दार्थ से ज्यादा महत्व होता है उसके भावार्थ का- खासकर, कविता में। उपन्यास, नाटक या छोटी कहानी में भी भावार्थ की प्रधानता होती है, परन्तु वर्णन में कुछ हद तक सीधा संवाद ही रह जाता है, जहाँ भावार्थ किंचित् शिथिल होता है, इसलिए कविता का अनुवाद करना कठिनतर होता है और इसलिए अनुवादक को पहले ही तय कर लेना पड़ता है कि वह भावात्मक अनुवाद करेगा या शब्दात्मक। उपन्यास, नाटक या कहानी के अनुवादकों को अक्सर दोनों ही करना पड़ता है, क्योंकि वस्तुनिष्ठता के साथ-साथ यहाँ कविता-जैसे मायामय विषय भी होते हैं। इतना ही नहीं, नाटक तथा उपन्यासादि कथा-साहित्य में बहुत ऐसी लोकोक्ति, रुचि, अभ्यास, आचरण, खान-पान, रहन-सहन, घर-गृहस्थी के सामान इत्यादि का जिक्र रहता है, जो किसी विशेष मानव समुदाय की पहचान होती है। अनुवाद के माध्यम से जब इन्हें दूसरे भाषा समुदाय के रसास्वादन के लिए परोसा जाता है, तो वे इनका आनन्द ले पायेंगे या नहीं, यह भी सोचना पड़ता है अनुवादक को। उसके विचार को सारा समुदाय स्वीकार करेगा या नकार देगा, इसकी निष्पत्ति जल्द नहीं होती। एक अनुवादक को इन्हीं द्विधाओं से गुजरना पड़ता है।

मानव समुदायों को एक दूसरे से परिचित कराने वाले इन कलाकारों के सामने कोई सुनिश्चित सफलता भी नहीं होती।

जयदीप शेखर अपनी धरती के एकलव्य हैं। एकान्त में चल रही है इनकी साधना- आत्ममग्न, परमताभिलाषी। अपनी उपलब्धियों को हर पल अतिक्रम करती है इनकी

शब्द-यात्रा। ऐसा नहीं है कि वे केवल अनुवाद का काम ही कर रहे हैं। 'नाज-ए-हिन्द सुभाष' इनकी सुभाष चन्द्र बोस पर भी लिखी हुई शोधमूलक विख्यात रचना है। बराबर वे आलेखादि लिखते हैं सामाजिक एवं आँचलिक विषयों पर। परन्तु अनुवाद ही इनकी पहली पसन्द है। विभूतिभूषण वन्द्योपाध्याय, बनफूल, सत्यजीत राय आदि की बहुत सारी किताबों का सफल अनुवाद ये कर चुके हैं। 'डाना' भी बनफूल का ही एक अनोखा उपन्यास है। न केवल भावानुवाद, न केवल शब्दानुवाद, बल्कि कमोबेश दोनों ही प्रक्रिया इन्होंने अपनायी है इस अनुवाद में, जिससे कि रचना रोचक और मनोग्राही हो उठी है।

इतावली भाषा में एक कथन प्रचलित है, जो इस प्रकार से हैः 'अनुवाद रमणी-जैसी है, सुन्दर है तो विश्वस्त नहीं, और विश्वस्त है तो निश्चित कुरूपा।' जयदीप का अनुवाद, मुझे लगा, इस कथन को झुठलाता है। यह सुन्दर भी है और विश्वस्त भी।

पाठकों से इसे प्राप्य है बेहद प्यार।

-डॉ. कृष्ण गोपाल रॉय

आलोचक एवं अवकाशप्राप्त प्राचार्य
कोलकाता- 700025

पुनश्च

[अनुवादक द्वारा किये गये उपन्यास के 'पुनर्समापन' {जो 3रे खण्ड के साथ है} पर]:

जयदीप,

तुम्हारा लेखन अद्भुत है। लिखने की ऐसी क्षमता होने पर स्वयं ही कहानी या उपन्यास लिखा जा सकता है और वह निश्चित रूप से पाठकों को पसन्द आयेगा।

प्रश्न है कि यह उपसंहार ('पुनर्समापन') उचित है कि नहीं।

उपन्यास की छह विशेषताओं में से एक है लेखक की 'फिलोसॉफी ऑव लाईफ', अर्थात् जीवन के बारे में लेखक की विशेष उपलब्धि, जिसे वे इस उपन्यास के माध्यम से बताना चाहते हैं। तुम्हारे द्वारा किया गया उपसंहार लेखक की 'फिलोसॉफी ऑव लाईफ' से नहीं मेल खायेगा। इस लिहाज से, आपत्ति बनती है। लेकिन तुमने जो ऑप्शन दे रखा है कि पाठक चाहे, तो ('पुनर्समापन' को) नहीं भी पढ़ सकते हैं, इससे लेखक की निजता का हनन नहीं होता है।

***

भूमिका

मूल लेखक "बनफूल" के बारे में

बँगला साहित्य में "बनफूल" का नाम बहुत सम्मान के साथ लिया जाता है। वे 'भागलपुर के लेखक' के रूप में जाने जाते हैं। एक लेखक के रूप में उन्होंने 60 उपन्यासों की रचना की है, जिनमें से कईयों को आज बँगला साहित्य में कालजयी कृति का दर्जा प्राप्त है। उनके द्वारा रचित कहानियों की संख्या 586 है, जिनमें ज्यादातर 'विनेट' (Vignettes) श्रेणी की कहानियाँ हैं- पेज भर लम्बी, सरस, चुटीली, वास्तविक जीवन से जुड़ीं, जो कि विस्मय के साथ समाप्त होती हैं- जैसे कि एक अच्छा शेर। उनकी कविताओं की संख्या हजारों में हैं और लेख अनगिनत। आत्मकथा तथा संस्मरण भी लिखे हैं उन्होंने।

"बनफूल" का मूल नाम बालायचाँद मुखोपाध्याय था। उनका जन्म मनिहारी (बिहार) में हुआ था (साल- 1899), साहेबगंज (अब झारखण्ड, तत्कालीन बिहार) के रेलवे हाई स्कूल से उन्होंने मैट्रिक पास किया था (साल- 1918), हजारीबाग (अब झारखण्ड, तत्कालीन बिहार) के सन्त कोलम्बस कॉलेज से इण्टर किया था और कोलकाता में छह वर्षों तक मेडिकल की पढ़ाई की थी उन्होंने। पहली नौकरी वे एक निजी लैब में करते हैं, फिर चिकित्सा अधिकारी बनकर कुछ वर्ष मुर्शिदाबाद (प. बँगाल) में तैनात रहते हैं और फिर भागलपुर (बिहार) में अपना खुद का पैथोलॉजी लैब स्थापित कर वहीं बस जाते हैं। भागलपुर में वे दीर्घ चालीस वर्षों तक रहते हैं। जीवन की सान्ध्यबेला में वे कोलकाता के सॉल्ट लेक में जाकर बसते हैं (1968)। वहीं उनका देहान्त होता है (1979)।

लेखन की शुरुआत उन्होंने हाई स्कूल के दिनों से ही कर दी थी। 1914 में जब वे साहेबगंज के रेलवे हाई स्कूल में आये थे, तभी उनकी कविता 'मालंच' नामक पत्रिका में छपी थी। प्रधानाध्यापक की डाँट पड़ी थी- वे साहित्यिक गतिविधियों को पढ़ाई-लिखाई में बाधक मानते थे। फिर एक अन्य शिक्षक- बोटू'दा- ने कविताएं लिखने के लिए उन्हें छद्म नाम अपनाने की सलाह दी और कहा कि जब तुम्हें फूल-पत्तियाँ पसन्द हैं, तो तुम 'बनफूल' नाम ही रख लो। 1918 में जिस साल उन्होंने मैट्रिक पास किया, उस साल बँगला की लब्धप्रतिष्ठित साहित्यिक पत्रिका 'प्रवासी' में उनकी कविता छपी।

उनके कई उपन्यासों पर हिन्दी-बँगला दोनों भाषाओं में फिल्में बन चुकी हैं। उनकी लेखन शैली तथा विषयों के चयन में बहुत विविधता है।

कहा जा सकता है कि "बनफूल" विलक्षण प्रतिभा के धनी एक कथाकार रहे हैं, मगर दुर्भाग्य से, हिन्दीभाषियों के बीच यह एक अपरिचित-सा नाम है। इसका कारण यह है कि उनकी रचनाओं का हिन्दी अनुवाद बहुत कम हुआ है- न के बराबर। अनुवाद कम क्यों हुआ है- यह भी एक रहस्य ही है। उनका विशाल रचना-संसार समग्र रूप से कभी हिन्दी में उपलब्ध हो पायेगा या नहीं- पता नहीं!

'डाना' उपन्यास के बारे में

'डाना' एक वृहत् उपन्यास है। "बनफूल" ने इसे तीन खण्डों में लिखा था। पहला खण्ड साल 1948 में प्रकाशित हुआ था, दूसरा 1950 में और तीसरा खण्ड 1955 में प्रकाशित हुआ था।

यह उपन्यास कई मायनों में एक अनोखी साहित्यिक रचना है, जिनमें से दो का जिक्र करना यहाँ उचित होगा।

1. पूरे उपन्यास में (तीनों खण्ड मिलाकर) छोटी-बड़ी कुल एक सौ कविताएं हैं। इस लिहाज से यह एक चम्पू काव्य है। यह एक ऐसी विधा है, जिसपर हाथ चलाना सबके बस की बात नहीं होती। चूँकि "बनफूल" एक कवि भी थे, इसलिए उनके लिए यह सम्भव हुआ। उपन्यास के गद्य के साथ-साथ पद्य का भी अनुवाद कर पाना अनुवादक के बस की बात नहीं थी। (जबर्दस्ती प्रयास करने का कोई तुक नहीं बनता।) इसलिए प्रस्तुत अनुवाद में कविताओं की शुरुआती कुछ पंक्तियों का अनुवाद करने की कोशिश की गयी है और कोष्ठक में लिख दिया गया है कि मूल कविता कुल कितनी पंक्तियों की है।

2. उपन्यास की पृष्ठभूमि में 'पक्षी-प्रेक्षण' (Bird Watching) सदैव चलते रहता है। प्रेक्षण के अलावे पक्षियों पर कुछ वैज्ञानिक जानकारियाँ भी उपन्यास में शामिल हैं। जाहिर है कि इसके लिए लेखक ने स्वयं भारत की घरेलू एवं प्रवासी पक्षियों पर गहन अध्ययन एवं शोध किया था और कई वर्षों तक स्वयं दूरबीन लेकर विभिन्न स्थलों पर पक्षियों का प्रेक्षण किया था। पक्षियों के प्रति लेखक के मन में बाल्यकाल से ही आकर्षण था, जिसे बढ़ावा दिया था एक प्रद्योतबाबू ने। लेखक के पिता के मित्र जयनबाबू ने लेखक को दूरबीन दिलवाया था। इस दूरबीन के चोरी चले जाने के बाद फिर प्रद्योतबाबू ने ही उन्हें एक दूसरा दूरबीन दिलवाया, जिसका उपयोग इस उपन्यास की रचना के दौरान हुआ। "बनफूल" ने 'डाना' उपन्यास को इन्हीं प्रद्योत कुमार सेनगुप्त को अर्पित किया था।

अन्यान्य देशों के लेखकों ने हालाँकि पक्षी-प्रेक्षण की पृष्ठभूमि पर उपन्यास/कहानियों की रचना की है, पर भारत में किसी अन्य लेखक ने ऐसा कोई प्रयास किया है- ऐसा लगता तो नहीं है। इस लिहाज से अपने ढंग का यह एकमात्र उपन्यास है इस देश में।

उपन्यास का कथानक। चिड़ियों के पंख यानि 'डैना' को बँगला में 'डाना' कहते हैं। यह उपन्यास पक्षी-प्रेक्षण की पृष्ठभूमि पर तो आधारित है ही, इसमें नायिका का नाम भी 'डाना' है। जन्म के समय अँग्रेज नर्स ने उसका नामकरण 'डायना' किया था, पर बोलचाल में वह 'डाना' हो गया। एक 'शरणार्थी' (बर्मा-रिफ्यूजी) युवती के रूप में डाना एक 'प्रवासी' पक्षी का प्रतिनिधित्व करती है- ऐसा कहा जा सकता है। कहानी के अन्य तीन प्रमुख चरित्रों में से एक हैं पक्षी-विशारद, जो पक्षियों के सम्बन्ध में बहुत जानते हैं और बहुत जानने को लालायित हैं, दूसरे सौन्दर्य के पुजारी एक कवि हैं, जो किसी भी पक्षी को देखकर मुग्ध हो उसपर कविता रचने लगते हैं और तीसरे जो चरित्र हैं, वे दुनियादारी में माहिर, एक तेज-तर्रार व्यक्ति हैं, जो किसी चिड़िया को देख यह सोचते हैं

कि इसका मांस सुस्वादु होगा या नहीं! एक विचित्र चरित्र एक युवा सन्यासी का भी है- जो मानो, हर बात से निस्पृह है।

कहानी का देशकाल। विश्वयुद्ध के दिनों की कहानी है। दिसम्बर 1941 से मार्च 1942 के बीच (ध्यान रहे, नेताजी सुभाष के जर्मनी से जापान आने से पहले की यह बात है) जापानी सेना ने बर्मा पर भारी बमबारी की थी और इस दौरान करीब पाँच लाख लोग बर्मा से भागकर भारत आये थे- बेशक, इनमें ज्यादातर भारतीय ही थे। डाना भी बर्मा से जान बचाकर भागकर आयी एक युवती है। जहाँ तक कहानी के 'देश' का सवाल है, 'हरिपुरा' नामक काल्पनिक कस्बे का चित्रण है, जो गंगा के किनारे बसा है, जहाँ आम के ढेरों बाग हैं, जहाँ से स्टीमर चलते हैं और जहाँ रेलवे स्टेशन भी है। ऐसा कस्बा वर्तमान झारखण्ड में 'राजमहल' नामक कस्बा है। जिसे कहानी में 'सदर' कहा जा रहा है, वह आज के 'साहेबगंज'-जैसा शहर जान पड़ता है। ध्यान रहे कि भागलपुर, साहेबगंज, राजमहल- ये सभी लेखक के अपने इलाके रहे हैं।

अन्त में, इस जानकारी को साझा कर दिया जाय कि एक अन्य बँगला लेखक 'परशुराम' ने "बनफूल" के पुत्रों को सलाह दी थी कि वे 'डाना' उपन्यास का अँग्रेजी में अनुवाद करवा कर उसे 'नोबल' पुरस्कार के लिए भेजवाने की व्यवस्था करें। बेशक, ऐसा हो नहीं पाया था। दूसरी तरफ, "बनफूल" का खुद का मानना था कि अच्छे पाठकों/दर्शकों की नजर में रचनाकार को मिला पुरस्कार कोई मायने नहीं रखता और 'कला' का मूल्यांकन 'काल' करता है! इस प्रसंग का जिक्र यहाँ इसलिए किया गया, ताकि यह अनुमान लगाया जा सके कि 'डाना' उपन्यास किस स्तर की कृति है!

'बर्ड वाचिंग' के बारे में

जैसा कि पहले बताया गया है, इस उपन्यास की पृष्ठभूमि में पक्षी-प्रेक्षण सदा चलते रहता है। कहा जा सकता है कि 'पक्षी-प्रेक्षण' (Bird Watching या Birding) एक शौक के रूप में हमारे देश में कभी लोकप्रिय नहीं रहा है। 1940-50 के दशक में तो बिरले ही इस विषय में रुचि रखते होंगे। उस जमाने के इस उपन्यास में लेखक ने पक्षी-प्रेक्षण को इतने रोचक तरीके से कथानक के साथ घुला-मिला दिया है कि- हो सकता है कि आज इस उपन्यास को पढ़ने के दौरान किसी पाठक के मन में पक्षियों के बारे में और अधिक जानने की रुचि जागृत हो जाय!

उक्त सम्भावना को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत हिन्दी अनुवाद के परिशिष्ट में उन पक्षियों की तस्वीरें प्रस्तुत की जा रही हैं, जिनका जिक्र उपन्यास में आया है। परिशिष्ट में ही छायाचित्रों वाले पक्षियों के नामों को अँग्रेजी वर्णमाला के क्रम में व्यवस्थित कर सूची के रूप में भी प्रस्तुत किया जा रहा है।

प्रसंगवश, याद दिला दिया जाय कि "बनफूल" 'Birdman of India' सलीम अली (1897-1986) के समकालीन थे। सलीम अली ने जहाँ विशुद्ध तकनीकी भाषा एवं शैली में भारतीय पक्षियों के बारे में लिखा, वहीं "बनफूल" ने साहित्यिक भाषा एवं शैली को चुना

इसी काम के लिए। सलीम अली की प्रसिद्ध पुस्तक 'The Book of Indian Birds' 1941 में प्रकाशित हुई थी और "बनफूल" ने 'डाना' उपन्यास को 1948-55 में लिखा था। पक्षीप्रेमी के रूप में दोनों दिग्गज आपस में परिचित थे या नहीं- यह अनुवादक को ज्ञात नहीं है, किन्तु इतना है कि उपन्यास में सलीम अली का जिक्र पक्षी-विशेषज्ञ के रूप में कई बार आया हुआ है।

कृतज्ञता ज्ञापन

जैसा कि ऊपर बताया गया है, प्रस्तुत पुस्तक में उन पक्षियों की तस्वीरें प्रकाशित की जा रही हैं, जिनका जिक्र उपन्यास में आया है- अँग्रेजी और हिन्दी नामों के साथ। ज्यादातर तस्वीरें Nature Web नामक वेबसाइट (https://www.natureweb.net/) से ली गयी हैं, जिसके योगदानकर्ता हैं: Parag Kokane और Amol Kokane। कुछ तस्वीरें WIKIMEDIA से ली गयी हैं, जो कि WikiMedia Foundation (WMF) (email: liaison@wikimedia.org), San Francisco, USA द्वारा संचालित है। इनके अलावे, दूधराजों की दो तस्वीरों के छायाकार Satyaki Hosmane हैं, पीले सिर वाली खंजन की छायाकारा Subbalaxmi Shastry हैं और पापुआ-न्यू गिनी के एक 'परम पक्षी' (वेस्टर्न पैरोटिया) के छायाकार Tim Laman हैं। उपर्युक्त संस्थाओं, उनके संचालकों तथा तस्वीरों के छायाकारों के प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट की जा रही है।

आशा है, साहित्यरसिकों एवं पक्षीप्रेमियों को यह पुस्तक पसन्द आयेगी। सुझाव, शिकायत एवं भूल-सुधार का स्वागत रहेगा।

इति।

-जयदीप शेखर

25 जनवरी 2021
बरहरवा (साहेबगंज), झारखण्ड- 816101
jaydeepshekhar@gmail.com

पुनश्चः

1. पूरे उपन्यास में 200 से ज्यादा प्रकार की चिड़ियों का जिक्र है, जिनमें से चार की पहचान नहीं की जा सकी- 1. हरा सिर बत्तख (Eastern White-eye, Nyroca Rufa Baeri Radde)- संस्कृत नाम मिला- प्राच्य मलिकाक्ष मज्जिका, पर तस्वीर कहीं नहीं मिली (BNHS के जर्नल (वॉल्युम- 34, पेज- 810) के अनुसार, इसे बँगाल में 1929 में देखा गया था) 2. जोयारि- यह सम्भवतः आस-पास पायी जाने वाली किसी चिड़िया का पुराना बँगला नाम है, जो अब प्रचलन में नहीं है 3. तिलेबाज- इसे 'तीसा' या 'टीसा' (White-eyed Buzzard) का बँगला नाम मान लिया गया है और 4. डोकहर- नाम तो हिन्दी जान पड़ रहा है, पर इस नाम को कहीं खोजा नहीं जा सका।

2. विकिमीडिया पर पक्षी विभाग (Gallery of Aves (Birds)) के अन्तर्गत दुनिया भर की भाषाओं एवं लिपियों में पक्षियों के नाम उपलब्ध हैं, पर हिन्दी/देवनागरी में नहीं। आशा है, हिन्दीभाषी पक्षी-विशेषज्ञ इस ओर ध्यान देंगे।

3. लेखक ने उपन्यास में कवि के माध्यम से कुछ चिड़ियों के नये नामकरण किये हैं- थिरथिरा (Redstart) के लिए 'फुलकी', पीलक (Golden Oriole) के लिए 'कनकसखी', महोका (Crow Pheasant) के लिए 'बादामी काली' और हुदहुद (Hoopoe) के लिए 'मोहनचूड़ा।' इन नामों को हिन्दी में भी अपनाया जा सकता है। सहेली (Minivet) का नामकरण उन्होंने 'आलतापरी' किया है, पर यह नाम हिन्दी के उपयुक्त नहीं है। (आलता- महावर।)

स्पष्टीकरण:

1. अनुवादक को साल 2021 में यह अनुवाद अपनी वैवाहिक रजत-जयन्ती पर अपनी श्रीमतीजी को अर्पित करना था, लेकिन उपन्यास का 'समापन' ऐसे अवसर पर अपने जीवनसाथी को दिये जाने वाले उपहार के उपयुक्त नहीं था। अतः अनुवादक ने उपन्यास के अन्त में एक अध्याय जोड़ते हुए इसका 'पुनर्समापन' किया। ऐसा करते हुए अनुवादक लेखक द्वारा उपन्यास में अभिव्यक्त 'फिलोसॉफी ऑव लाईफ' के विरूद्ध चले गये। सवाल उठेगा कि अनुवादक ने ऐसा दुस्साहस कैसे कर लिया? दरअसल, अनुवादक को ऐसा करने की प्रेरणा लेखक की ही एक (अन्य) कहानी "ऐरावत" से मिली है।

2. प्रस्तुत अनुवाद के पाठ में जहाँ क्रिया वाले शब्द एक या दो अक्षरों के हैं, वहाँ 'कर' को साथ में जोड़कर लिखा गया है- जैसे, 'लेकर' 'मुड़कर' इत्यादि; लेकिन जहाँ क्रिया वाले शब्द दो से ज्यादा अक्षरों के हैं, वहाँ 'कर' को अलग करके लिखा गया है- जैसे, 'पलट कर' 'हड़बड़ा कर' इत्यादि। यानि ऐसा भूलवश नहीं हुआ है, बल्कि सायास किया गया है- प्रयोग के तौर पर।

***

(प्रथम खण्ड)

अध्याय- 1

कवि और पक्षी-वैज्ञानिक घूमने निकले थे। साथ में थे मित्र रूपचँद मौलिक। रूपचँद कवि भी नहीं थे और पक्षी-वैज्ञानिक भी नहीं, लेकिन दोनों ही क्षेत्र में थोड़ी-बहुत अभिरुचि रखते थे। दोनों ही जगत के रूप-रस-गन्ध उन्हें आकर्षित करते थे, लेकिन एक सीमा से ज्यादा नहीं। रसिक व्यक्ति थे, लेकिन दुनियादारी जानते थे। अर्थात् खो जाते थे जरूर, लेकिन समय पर दफ्तर जाना नहीं भूलते थे।

उस दिन तीनों मित्र निकले थे पक्षी-प्रेक्षण के लिए। यही नहीं, तीनों ने तय कर लिया था कि जब तक पक्षी-परिचय पूरा नहीं हो जाता, वे इसी तरह बाहर निकलते रहेंगे। सनकी स्वभाव वाले वैज्ञानिक ने प्रेरित किया था कवि को और इन दो दीवानों को सम्भालने निकले थे रूपचँद। तीनों के गले से दूरबीन लटक रहे थे। कवि थे अन्तर्मुखी, हर वक्त कविता रचने, गुनगुनाने वाले; पक्षी-वैज्ञानिक सजग दृष्टि रखने वाले एकाग्रचित्त व्यक्ति थे और रूपचँद थे ठण्डे दिमाग वाले व्यवहारकुशल व्यक्ति।

कवि के मन में कविता फूट रही थी-

शीत का यह निर्मल नीला आकाश, झिलमिल करती यह धूप
कालीन-सा बिछा हरियाली का गलीचा, दूर क्षितिज तक
कहाँ हो तुम सखी, अब आ भी जाओ।
मरकत मणि कितने आवेग के साथ चूम रहा नीलाम्बर को
जौ-गेहूँ-चना-मटर की महिमा
पार कर जा रही उपमा की सीमा
धरा का धूसर रंग बदल कर
रूपान्तरित हो गया हरित ज्वाला में।
मन-प्राण चंचल-व्यग्र हो रहे
कहाँ हो तुम सखी, आ भी जाओ।
हरियाली का गलीचा बिछा है दूर क्षितिज तक
निर्मल, नीला आकाश चमक रहा सुनहरी धूप में।

"सुनिए।"

कवि वैज्ञानिक की ओर पलटे। देखा, वे एक झाड़ी के पास उकड़ूँ होकर बैठे थे। आँखें चमक रही थीं उनकी। हाथ के ईशारे से फिर बुलाया। बुलाने के बाद

झट्-से आँखों पर दूरबीन चढ़ा लिया। फिर धीमी आवाज में बोले, "बारबेट है एक। धीरे-धीरे आईए। हाँ, उधर से घूमकर आईए। देखिए उधर।"

उनकी उँगली के ईशारे का अनुसरण करते हुए कवि ने दूरबीन लगाया। चिड़िया नहीं दिखी, लेकिन बरगद की पत्तियाँ कितनी सुन्दर थीं। पहले कभी इस तरह से देखना नहीं हुआ था।

"उड़कर उस नीम के पेड़ पर चली गयी। आईए, इधर से चला जाय।"

उठकर तेज गति से- प्रायः दौड़ते हुए- वैज्ञानिक नीम के पेड़ की तरफ चल पड़े। कवि भी भागे।

'कुड़-कुड़-कुड़-कुड़-कुड़, कुडुरुक-कुडुरुक-कुडुरुक।'

पक्षी की आवाज थी।

"उसी की आवाज है?"

"हाँ।"

"सुन्दर आवाज है। क्या नाम है उसका?"

वैज्ञानिक धीरे-धीरे थोड़ा और पास खिसक कर एक झाड़ी के पास उकड़ूँ बैठ गये थे। कवि भी बढ़े उधर।

"नाम क्या है उसका?"

वैज्ञानिक ने तर्जनी उठाकर फुसफुसा कर कहा, "चुप रहिए, कुछ बोलिए मत।"

वे दूरबीन से निरीक्षण कर रहे थे। अचानक उल्लसित होकर कवि की ओर मुड़कर बोले, "नीचे की तरफ वह छोटी डाली जो मुड़ी हुई है न, उसी पर देखिए।"

कवि ने दूरबीन लगाया, किन्तु चिड़िया नहीं देख पाये। उन्हें दिखी रूखे बालों और मैले-कुचैले कपड़ों वाली एक बुढ़िया, जो झुककर लकड़ियाँ चुन रही थी।

"फिर उड़ गयी। दिखी आपको?"

"नहीं।"

"युक्लिप्टस के पेड़ पर जा बैठी है। चलिए, चला जाय।"

"नाम क्या है चिड़िये का?"

"अँग्रेजी में बारबेट कहते हैं। बहुत तरह की बारबेट होती हैं। इस इलाके में एक और तरह की बारबेट पायी जाती है, जिसका अँग्रेजी नाम कॉपरस्मिथ है। बँगला नाम- बसन्तबउरी और हिन्दी नाम- बसन्तगौरी या छोटा बसन्था। हरा रंग, सीने पर हल्की सफेद लकीरें। छोटी चिड़ियों के सिर और सीने पर लाल रंग

रहता है। बड़ी चिड़ियों का सिर ताम्बई होता है। छोटी प्रजाति वाली के कई सारे देशी नाम हैं- गयलाबूड़ी, भागीरथ, कलापाखी, जोकारेपाखी। सुनिए-सुनिए, छोटी वाली चिड़िया, यानि गयलाबूड़ी बोल रही है।"

'टंक-टंक-टंक, टुक-टुक-टुक- '

"ठठेरा बर्तन ठोंकते समय जैसी आवाज करता है, बहुत कुछ वैसी ही है न?"

'कुडुरुक-कुडुरुक-कुडुरुक-कुडुरुक।'

'टंक-टंक-टंक, टुक-टुक-टुक- '

झाड़-झंखार रौंदते हुए वैज्ञानिक तेजी से चले जा रहे थे। पीछे-पीछे कवि थे। उनके मन में कविता जन्म ले रही थी-

पेड़ की डाली पर हरी पत्तियों के झरोखे में
रहती है एक गयलाबूढ़ी
पहनावा है उसका हरा-भरा
गाती है वह मीठे स्वर में
फैल जाती हैं गीत की स्वरलहरियाँ चहुँओर।
वह कोई बूढ़ी औरत नहीं
वह है चंचल छोटी एक चिड़िया
आसानी से नजर नहीं आती वह
फुदक कर उड़ जाती इधर-उधर।
गाते हुए मीठे स्वर में
उड़ती-फिरती जंगल भर में
सिर और सीने पर लाल टीका
जल रही मानो अग्निशिखा
ज्यों स्वप्न हरियाली के बीच में।
ओ भागीरथी, यह सुर लगाकर
कौन-सी गंगा लाओगी बहाकर
सारा-सारा दिन किसे पुकारती रहती तुम?

चलते-चलते कवि ने आँखों पर फिर एक बार दूरबीन चढ़ाया। चिड़िया नहीं दिखी, दिखी वही बुढ़िया। मैली-कुचैली बूढ़ी। दारिद्र्यजीर्ण। देखकर दया आती है, लेकिन अभी वह अवांछित है। यहाँ क्यों है वह? महत्व जहाँ विगलित होकर शतधारा में बहकर गिर रहा है, वहीं से स्नान कर आये वह। रूप-रंग-स्वर की इस महफिल में अवांछित है वह।

नीम की डालियों से बह रहा हरित झरना
कह रहा- बूढ़ी तुम हट जाओ, हट जाओ
यदि नहीं हटना
तो चलो उस उत्सव में
चले चलो उस देश में
जहाँ कोई पराया नहीं होता।

जहाँ फूल खिल रहे
गुच्छों में, जंगलों में
जहाँ चेहरे पर और नयनों में
दमकती है हँसी
जुगनूओं की जगमगाहट में जैसे
छुपी रहती हैं परियाँ
दारिद्र्य को भी पहना देते हैं जहाँ
रंगीन परिधान
चले चलो उस देश में
जहाँ कोई नहीं पराया।

बूढ़ी खो गयी, नीम का पेड़ खो गया, सहसा कवि के मन में जाग उठा एक नया सुर। ना पाने का चिरन्तन सुर, जो हृदय के अन्तःस्थल से कारण-अकारण प्रवाहित होने लगता है कभी-कभार-

कहाँ तुम, कहाँ हो तुम प्रिये
ओ अग्नि, ओ मेरी शिखा
अन्तराल में छुपी हुई हो कहाँ
हटाओ सखि, हटाओ यवनिका।
(कुल 17 पंक्तियों की कविता।)

आम के एक पेड़ पर परजीवी पौधा उगा हुआ था। लाल-लाल थीं उसकी पत्तियाँ। यह अचानक ही कवि को नजर आया था। उत्सुक होकर कवि उसे निहारने लगे। ऐसा लगा- मानो, इसी वर्णोत्सव के बीच उनकी आकांक्षिता मिलेगी।

“उधर क्या देख रहे हैं, इधर आईए। चिड़िया उड़कर फिर कटहल के पेड़ पर जा बैठी है। इसबार दिख जायेगी शायद। ...देखिए-देखिए, दिखायी पड़ी?”

छोटी चिड़ियों का एक झुण्ड उड़ गया। उड़कर यह झुण्ड दूर आम के एक पेड़ पर बैठा।

"मिनिवेट- " उत्साहित स्वर में वैज्ञानिक बोल पड़े। फिर आँखों पर दूरबीन लगाकर वहीं घास पर बैठ गये। कवि की ओर देखा एक बार। दृष्टि उत्फुल्ल।

"मिनिवेट। बँगला नाम सयाली, हिन्दी में सहेली। ये सभी छोटी सयाली हैं। बहुत सारी आकर बैठी हैं, अभी दिख जायेंगी। उसी पेड़ पर फोकस कीजिए। उड़ने पर देखिएगा- पेट पर डैनों के नीचे गहरा लाल रंग है। पीठ का रंग कुछ-कुछ कालापन लिये होगा- मतलब ग्रेइस ब्राउन। अच्छे-से देखिएगा।"

कवि ने आँखों पर दूरबीन चढ़ाकर आम के पेड़ पर दृष्टि निबद्ध किया। अचानक उन्हें दिख गयीं।

"देखा। वाह, गजब सुन्दर हैं! क्या नाम बताया?"

"सात सयाली।"

"पसन्द नहीं आया। मैं उन्हें नाम देता हूँ- आलता परी- "

(बँगला में 'आलता' 'महावर' को कहते हैं।)

कवि फिर दूरबीन लगाकर देखने लगे।

वैज्ञानिक बोले, "चलिए, अब बारबेट को देखने की कोशिश की जाय।"

दोनों कटहल के पेड़ की तरफ बढ़े।

कवि मन में गुनगुनाने लगे-

शीतकाल में गुप्त राह से
आया क्या फागुन
अनारकली आलता-परी
राख में दबा आगुन।
(आगुन- आग)

"बैठ जाईए यहीं। कटहल पेड़ की जो डाली ताड़ के पेड़ की तरफ झुकी हुई है, वहीं बैठी है बसन्तगौरी। बहुत ही चंचल चिड़िया है- उसी जगह पर फोकस करके रखिए, दिख जायेगी।"

बैठने की जगह ठीक नहीं थी- काफी ढालू थी। बाँयी तरफ खजूर की एक झाड़ थी। वैज्ञानिक निर्विकार भाव से वहीं बैठ गये थे। कीमती पैण्ट गन्दी हो रही थी- इसकी कोई चिन्ता नहीं थी उन्हें। कपड़ों की चिन्ता कवि को भी नहीं थी, लेकिन ढालू जगह पर बैठते नहीं बनता। इसलिए खड़े रह कर ही उन्होंने दूरबीन आँखों से लगाया। चिड़िया उड़ गयी। वैज्ञानिक गुस्सा हुए।

"कह रहा हूँ बैठ जाईए, खड़े क्यों हैं? बहुत चालाक चिड़िया है। जरा भी आभास होगा कि कोई देख रहा है, तुरन्त उड़ जायेगी। फिर युक्लिप्टस के पेड़ पर जाकर बैठी। चलिए, फिर चलना होगा इतना सारा।"

दोनों चल पड़े।

वैज्ञानिक को लगा, इस बीच कवि को मिनिवेट के सम्बन्ध में थोड़ी जानकारी दे देने से समय कट जायेगा।

उन्होंने बताना शुरू किया, "वो जो मिनिवेट आपने देखे, उनमें नर और मादा दोनों एक-जैसे नहीं होते। नर के पंखों के नीचे और पेट पर जैसे लाल रंग होता है, वैसे मादा का पीला होता है।"

कवि ने उत्तर दिया, "मैं चिड़ियों के रंग-रूप का पुजारी ठहरा, नर-मादा में मेरी रुचि नहीं। व्याकरण या छन्द को लेकर मैं ज्यादा दिमाग नहीं खपाता। आप जो बता रहे हैं, वह अगर सही है, तो मैं कहना चाहूँगा-

आलता-परी आलता-परी
रंग निपुणा रंगिनी
साथ लेकर घूमती हो
बासन्ती रंग संगिनी।"

वैज्ञानिक हँस पड़े, कवि भी हँसे। वे लोग युक्लिप्टस के पेड़ तक आ पहुँचे थे।

"साफ दिख रही है इस बार। लगाईए-लगाईए, दूरबीन लगाईए, वाह!"

दूरबीन से कवि को भी दिखा इस बार।

"दिख गया। बारबेट? ऊँहूँ, नाम अच्छा नहीं है। इसे परी भी नहीं कह सकते। काफी कुछ चक्रवर्ती-जैसा भाव है। उसकी सुरीली आवाज सुनकर लगता है जैसे कोई चुलबुली किशोरी हो। हाँ, शरीर पर रंगों की बहार है। पीठ हरा है; सिर ठीक से नहीं दिख रहा... हाँ, दिखा अब- ताम्बई है। फिर घूम गयी। अब सीना दिख रहा है। प्रायः सिर-जैसा ही रंग है। आँखों पर पीला चश्मा है। चोंच भी पीले... उड़ गयी... "

बाहर से प्रवीण चक्रवर्ती
अन्तर से तुम किशोरी कलस्वरा
(कुल 12 पंक्तियों की कविता)

कवि मन-ही-मन कविता रच रहे थे और वैज्ञानिक बताते जा रह थे, "ये बारबेट कहाँ घोंसला बनाती हैं- जानते हैं? पेड़ की डालियों पर गड्ढे बनाकर।

इनके शरीर पर इतने सारे रंग हैं, अण्डे लेकिन इनके सफेद होते हैं... अरे, वो देखिए-देखिए... "

सिर के ऊपर से पीले रंग की चिड़ियों का एक झुण्ड उड़ गया।

"बण्टिंग- "

"बँगला नाम क्या है?" कवि ने पूछा।

"नहीं पता। शीतकाल में ये झुण्ड बनाकर आती हैं। धान, ज्वार, बाजरे के खेतों में झुण्ड के झुण्ड उतरती हैं। फसलों को बहुत नुकसान पहुँचाती हैं ये, लेकिन देखने में गजब की होती हैं। झुण्ड में जब पेड़ों पर बैठती हैं, तो हरे के बीच पीले की शोभा देखने लायक होती है। इनकी दो प्रजातियाँ आम तौर पर पायी जाती हैं- एक प्रजाति का सिर काला होता है और दूसरी का सिर लाल, समझे? लेकिन इनकी खासियत होती है, इनका सोने-जैसा पीला रंग। छोटी चिड़ियाँ हैं- हमारी गौरैया-जितनी।"

कवि बोले, "कहीं ये ही सोन-चिड़िया तो नहीं हैं? दादीमाँ के मुँह से सुनता था-

छेले घुमोलो पाड़ा जुड़ोलो
बर्गी एलो देशे
सोनपाखी ते धान खेयेछे
खाजना देबो किसे?"

(यह बँगला की एक पुरानी एवं लोकप्रिय 'छड़ा'- चौपाई है, जिसका शाब्दिक अर्थ कुछ इस प्रकार से बनेगाः 'बच्चा सो गया, मुहल्ला शान्त हो गया, 'बर्गी' आये गाँव में, सोन-चिड़ियों ने धान खा लिया, लगान देंगे कैसे?' 1741-51 के दौरान मराठा सैनिकों का बँगाल के पश्चिमी हिस्से पर वर्चस्व हो गया था, वे प्रतिवर्ष लगान बहुत सख्ती से वसूलते थे- यह एक लूट थी। उन्हें 'बर्गी' कहा जाता था। यह लोक-कविता उन्हीं दिनों की है।)

"ठीक कहा, ये सोन-चिड़ियाँ ही हैं।"

वैज्ञानिक पल भर को ठहरे। एक बार तीक्ष्ण दृष्टि डाली उन्होंने कवि के चेहरे पर, फिर बोले, "ऐसा हो सकता है, ठीक ही कह रहे हैं। वह देखिए, एक और झुण्ड उड़ा जा रहा है। शायद पहले वाला ही झुण्ड है।"

कवि विस्मित होकर देख रहे थे। उन्हें लग रहा था- मानो, सोने का मेघ उड़कर जा रहा हो।

सोने का मेघ उतर रहा है शायद

मर्त्यभूमि पर
क्या इसलिए धरा अर्घ्य सजा रही
हरे धान, जौ, गोधूम रूप में
(कुल 9 पंक्तियों की कविता)

कवि निश्शब्द देखते रहे- सोने का मेघ उड़कर क्रमशः दृष्टि से ओझल हो गया।

वैज्ञानिक बोले, "सुना है कि उनके अण्डे बहुत सुन्दर होते हैं। हल्के हरे रंग के। वैसे, म्युजियम में देखा भी था एक बार।" -इतना कहने के बाद वैज्ञानिक का ध्यान गया, "रूपचँद नहीं दिखायी पड़ रहे। कहाँ गये वे?"

इधर-उधर देखकर कवि बोले, "सही में, कहाँ गये?"

"चलिए, देखा जाय।"

दोनों रूपचँद की खोज में निकले।

"उन्हें तो पहचानते ही होंगे?"

"हाँ, छातारे।"

"हिन्दी नाम कचबचिया, कोई-कोई सात-भाई भी कहते हैं। लेकिन जिस तरह से ये हर वक्त कचबच करते रहती हैं कि अँग्रेजी नाम सेवेन-सिस्टर्स ही सही लगता है- क्या कहते हैं? इनमें आपस में काफी मेल होता है। बाज अगर एक को उठा ले जाय, बाकी भाग नहीं खड़ी होतीं, बल्कि बाज का पीछा करती हैं; कई बार तो छुड़ा भी लाती हैं। ऐसा भी देखा गया है कि इनके झुण्ड को जब पिंजड़े में बन्द करके रखा जाता है, तब एक को आजाद कर देने पर वह पिंजड़े में फिर वापस आ जाती है। आपस में बहुत प्यार होता है इनमें। दोपहर किसी पेड़ की छाया में देखिएगा, एक-दूसरे का सिर खुजा देती हैं ये। इन पर आप लोग कविताएं नहीं रचते, लेकिन जिन पर रचते हैं, उनके साथ इनका प्रगाढ़ सम्बन्ध है। कोयल जिस तरह कौए के घोंसले में अण्डे देती है, उसी तरह चातक और कुपवा इनके घोंसलों में अण्डे देती है। इनके अण्डों को देखकर आपके मन में कवित्व जागेगा। चिड़ियों के अण्डों को लेकर मैं जो लेख तैयार कर रहा हूँ- वो देखिए, एक तितली को पकड़ लिया है। कीड़े खूब खाती हैं ये, फल भी चाव से खाती हैं- "

वैज्ञानिक कचबचिया के सम्बन्ध में धराप्रवाह बोले जा रहे थे, लेकिन कवि का मन एक ही बात पर अटका हुआ था कि उनके बीच आपस में बहुत प्यार होता है और इसी को लेकर उनके मन में दो पंक्तियाँ उमड़-घुमड़ रही थीं-

आपस में इतना स्नेह है ना कि
धरा की धूल की धूसरवरण पाखी?

अचानक दूर में रूपचँद दिखायी पड़े।

अकेले नहीं, साथ में एक लड़की भी थी। कुछ और नजदीक जाने पर पता चला, वह युवती थी। और भी कुछ नजदीक जाने पर दिखायी पड़ा, जमीन पर एक मटका रखा हुआ था।

कवि ने पूछा, "वह क्या है?"

कुछ पल मुस्कुरा कर देखने के बाद रूपचँद ने उत्तर दिया, "रस।"

"क्या रस?"

"मधुर।"

इसके बाद कुछ पल और मुस्कुरा लेने के बाद वे बोले, "थकान उतारने के लिए खजूर का रस। सब जुगाड़ कर लेने के बाद आप लोगों को खोजने निकलने ही वाला था। ...प्याले तीनों कहाँ गये?"

पता चला, इस बियाबान में भी रूपचँद ने काँच के तीन गिलासों का जुगाड़ कर लिया था।

युवती की ओर देखकर रूपचँद बोले, "आप ही परिवेशन कीजिए तब।"

युवती ने शिष्टता के साथ सिर हिलाकर गिलासों में घड़े से रस डालना शुरू कर दिया। वैज्ञानिक आँखों पर दूरबीन चढ़ाये जाने क्या देख रहे थे, इन बातों की तरफ उनका ध्यान ही नहीं था। कवि मुग्ध भाव से अपरिचिता युवती की ओर देख रहे थे। लावण्यमयी तरूणी।

शीत की सुनहरी धूप में जागी है स्वप्नसुन्दरी
चढ़ गया आँखों में हाय रंग का भाँग
रंगीन स्वप्नलोक में मन मानो भटक कर तड़प रहा
घूम-फिर कर बार-बार जाने किसे रहा माँग।
(कुल 16 पंक्तियों की कविता)

"लीजिए।"

कवि इस दुनिया में लौटे। देखा, रस का फेनिल प्याला पकड़े हुए है वह। कवि के मुँह से निकल गया, "खोजने निकला था पाखी, मिल गयी साकी।"

युवती थोड़ा-सा हँसी। कवि को लगा, यह हँसी म्लान है- विषण्ण।

वैज्ञानिक आँखों से दूरबीन उतारकर सोत्साह बोले, "वाह, सफेद पेट वाला फिंगा दिखा एक। उधर दूर के आम के पेड़ की नीची वाली डाली पर बैठा है।

देखिएगा? उधर नहीं, इधर से चलिए। थोड़ा और चला जाय। आपको यहाँ से नहीं दिखेगा। चलिए।"

"रस तो पीते जाईए।"

"ओह, धन्यवाद। दीजिए।"

वैज्ञानिक एक ही साँस में गटागट पी गये। फिर कवि की ओर मुड़कर बोले, "चलिए। सफेद पेट वाला फिंगा, यानि पहाड़ी कोतवाल जल्दी दिखता नहीं है। रूपचँद, चलना है?"

रूपचँद एक पेड़ के तने से पीठ टिकाकर चुस्कियाँ लेकर रसपान कर रहे थे। बोले, "आप लोग बढ़िए, मैं आ रहा हूँ।"

अध्याय- 2

वैज्ञानिक का नाम अमरेश सेनगुप्त था। वैज्ञानिक बनने की योग्यता थी उनमें। संयोग का भी साथ मिला। धनी पिता के एकमात्र पुत्र, धनी श्वसुर के एकमात्र जमाई। विदेश के विश्वविद्यालय की बड़ी डिग्री भी थी उनके पास- जीव-विज्ञान में। साधारण व्यक्ति होते, तो नौकरी करते। उनके लिए नौकरी का जुगाड़ करना ज्यादा मुश्किल भी नहीं होता।

अमरेश लेकिन असाधारण व्यक्ति थे। नौकरी के कोल्हू में घूम-घूम कर नपा-तुला ज्ञान-तेल निकाल कर संतुष्ट हो जाने वाला मन उनका नहीं था। प्रकृति के विराट विश्वविद्यालय के विद्यार्थी थे वे। ज्ञान पाना चाहते थे वे। सदा उत्सुक, सदा उत्कर्ण। उनके लिए यह सम्भव भी था, क्योंकि अर्थाभाव नहीं था। पितृकूल और श्वसुरकूल- दोनों तरफ से ही जिस परिमाण में उन्हें अर्थ मिला था, वह अनायास ही अनर्थ पैदा कर सकता था- अगर वे साधारण व्यक्ति होते।

वे जो करना चाहते थे- सनातन मल्लिक के अनुसार, वह निरर्थक था। वे इस ग्रामीण क्षेत्र में- अपनी जमीन्दारी में ही- एक चिड़ियाघर बनाना चाहते थे। उसमें जीवित व मृत- दोनों ही प्रकार की चिड़ियाँ रहेंगी। उनका मानना था कि इस देश में पक्षी-विषयक सम्यक गवेषणा अभी नहीं हुई है। विदेशी साहब लोग नौकरी करते हुए भी समय निकाल कर जितना हो सका, उतना काम कर चुके हैं। उनका प्रयास प्रशंसनीय है- इसमें कोई सन्देह नहीं, लेकिन अभी भी बहुत कुछ किये जाने की जरुरत है। ऐसी अनेक छोटी चिड़ियाँ उन्हें दिखायी पड़ती थीं, जिनकी श्रेणी का निर्धारण अभी तक ठीक से नहीं हुआ है। उनके अनुसार,

चिड़ियों की वार्षिक गतिविधि के सम्बन्ध में भी सभी तथ्य पूरी तरह से अभी उद्घाटित नहीं हुए थे। उनकी इच्छा थी कि वे इन विषयों का अध्ययन-पर्यवेक्षण करेंगे। चिड़ियों की चोंच, पंखों एवं पैरों की बनावट के आधार पर चिड़ियों की नयी-नयी श्रेणियों का आविष्कार करेंगे। कोलकाता से आकर इन दिनों वे आस-पास के इलाकों में पर्यवेक्षण कर रहे थे सिर्फ। ठीक-ठीक कौन-सा रास्ता लेंगे वे- यह अभी तय नहीं हुआ था। अभी तो नयी-नयी योजनाएं आकर उनके दिमाग में गड्ड-मड्ड हो रही थीं।

एक और सुविधा थी, अभी सन्तानादि नहीं हुए थे। तीसरी सुविधा यह थी कि पत्नी रत्नप्रभा भी असाधारण महिला थीं। अत्यन्त कुरूप। काला रंग, बलिष्ठ देहयष्टि। अचानक देखने पर लगेगा- मानो, फजली आम। बहुत कम बोलती थीं। आँखें दोनों काफी बड़ी-बड़ी। इन्हीं आँखों को कभी कुंचित, कभी विस्फारित कर मनोभाव प्रकाशित करती थीं वे। शब्दों का प्रयोग यदा-कदा ही करतीं। जब बोलती थीं, ठीक से समझ में नहीं आता था। कण्ठस्वर में कँपकँपाहट थी, रुक-रुक कर बोलती थी- जैसे, सर्दी से पीड़ित हों। लिखाई-पढ़ाई विशेष कुछ नहीं थी। अमरेश के क्रिया-कलापों को निर्वाक् हो विस्मय के साथ देखती रहती थीं वे। चंचल बच्चों की शरारतों से स्नेहमयी माता जिस प्रकार आनन्दित होती हैं, उसी प्रकार मनमौजी प्रकृति के पति की शिशुसुलभ उच्छृंखलता का वे उपभोग करती थीं। बेशक, नीरवता के साथ। बातचीत के कलरव या शोरगुल से अमरेश की शान्ति को वे विघ्नित नहीं करती थीं। अपनी अयोग्यता के प्रति वे बहुत सचेत रहती थीं। अमरेश के जैसे विद्वान, रूपवान पति की सहधर्मिणी बनने लायक था ही क्या उनमें? वे जी-जान से इसी चेष्टा में लगी रहती थीं कि अमरेश को कभी कोई कष्ट न हो। भोजन, बिस्तर, किताबें, यंत्र-उपकरण, चिड़ियों इत्यादि को निपुणता के साथ सम्भाल कर अमरेश की लापरवाह, खामख्याली जीवनशैली को काफी हद तक शृँखलाबद्ध करने का प्रयास करती थीं वे। क्रीतदासी के समान सेवा करतीं, लेकिन बाहर से किसी को इसका अहसास नहीं होने देतीं।

उनके काले, मांसल चेहरे को देखकर लगता था कि वे बहुत ही धीर-गम्भीर, अर्न्तमुखी महिला होंगी। अन्दर ही अन्दर वे इतनी कुण्ठित और भीरू होंगी, बाहर से यह समझने का कोई उपाय नहीं था। अमरेश भी मन-ही-मन उनसे डरते थे। इतना ही नहीं, रत्नप्रभा की बुद्धि उनके मुकाबले कुछ कम है- इस तथ्य को तो मानो, वे मानते ही नहीं थे। पक्षी-विषयक नाना प्रकार की वक्तृता

निस्संकोच वे रत्नप्रभा के समक्ष दिये जाते थे। रत्नप्रभा गम्भीर मुखमुद्रा के साथ बैठे-बैठे सुनती रहती थीं।

उस दिन वही हो रहा था। रत्नप्रभा गम्भीर मुखमुद्रा के साथ सुपारी कतर रही थीं और अमरेश लगातार बोले जा रहे थे-

"सुनो, सोच रहा हूँ, और भी कुछ रेडस्टार्ट पकड़ूँगा। पकड़ कर उनके पैरों में लोहे के छोटे-छोटे रिंग पहना दूँगा। उन देशों में अल्युमिनियम के रिंग पहनाते हैं, लेकिन यहाँ तो वे मिलने से रहे। लोहे के रिंग पहना दूँगा। जैसे कि दोयेल-दहियर चिड़ियों के पैरों में पहनाया था। रेडस्टार्ट चिड़ियों को भी पहनाना होगा। जानती हो क्यों?"

रत्नप्रभा ने कहा, "आप जो दहियर चिड़ियों का जीवन-चरित लिखने की बात कर रहे थे, उसका क्या हुआ?"

अमरेश कुछ पलों के लिए अकचका गये। अपनी देशी चिड़ियों की जीवनशैली की बारीकियों का प्रेक्षण कर प्रबन्ध लिखने की इच्छा थी उनकी। दहियर के बारे में लिखना शुरू भी किया था, लेकिन अपनी इस साधना को वे एकाग्र नहीं रख पा रहे थे। इस बात का आभास था उन्हें। रत्नप्रभा को भी इसका आभास है- जान कर लज्जित हुए वे। स्कूली बच्चे पढ़ाई की अवहेलना करने के बाद शिक्षक के सामने जिस प्रकार बहानेबाजी करते हैं, उनका उत्तर भी कुछ उसी प्रकार का रहा-

"शीतकाल में दहियर चिड़ियाँ नजर ही तो नहीं आ रहीं। आवाज तक नहीं सुनायी पड़ती। बीच-बीच में एकाध बार दिख जाती हैं। जितना देख पाता हूँ, नोट करके रख लेता हूँ। शीतकाल में विण्टर-विजिटर चिड़ियों पर ध्यान देने में हर्ज क्या है? क्या कहती हो?"

अपनी थरथराती आवाज में रत्नप्रभा बोलीं, "हाँ, अच्छी बात है।" कह कर वे फिर सुपारी कतरने लगीं।

वैज्ञानिक उत्साह के साथ फिर शुरू हो गये, "ये रेडस्टार्ट हिमालय के अँचलों में रहती हैं। शीतकाल में इस तरफ आ जाती हैं। यहाँ यदि उनको रिंग पहना दिये जाएं, तब इनके वापस हिमालय लौटने पर इन्हें पहचाना जा सकता है। उस वक्त हमलोग यदि उस अँचल में रहें, या उन पर नजर रखने के लिए कोई आदमी रखें वहाँ, तो जाना जा सकता है कि ये ठीक कब लौटती हैं। इस इलाके से उस इलाके में जाने में इन्हें कितना समय लगता है। इस टाईम-फैक्टर को जानना बेहद जरूरी है- समझीं? इसके बाद जानना होगा कि क्यों लौटती हैं ये?

बेशक, हिमालय से ये भाग आती हैं ठण्ड के कारण। शीतकाल में वहाँ भोजन की कमी भी हो जाती है, लेकिन अण्डे देने के लिए फिर वापस क्यों लौटती हैं ये? हो सकता है कि गर्म इलाकों में उनके अण्डे खराब हो जाते हों। हमलोगों का दीघीचक के पास दसेक बीघे का जो बागान है, हरिशबाबू उसकी बन्दोबस्ती लेना चाहते हैं, लेकिन मैं तो सोचता हूँ कि नहीं दूँगा। सारे बागान को जाल से घेरवा कर उसके अन्दर सौ के करीब रेडस्टार्ट को रोक के रखना चाहता हूँ। देखा जाय, वे यहाँ अण्डे देती हैं या नहीं! समझीं, कैसे क्या करना है- इसका एक खाका भी बना रखा है मैंने, देखो- " एक विशाल नक्शा निकाल कर रत्नप्रभा को समझाने लगे वे कि बाग को किस तरह से घेरना है। रत्नप्रभा गम्भीर मुखमुद्रा के साथ ऐसे झुककर देखने लगीं, मानो, वे कोई बड़ी इंजीनियर हों।

बाहर से आवाज आयी, "अमरबाबू घर पर हैं क्या?"

कवि की आवाज थी।

"कौन, आनन्दबाबू? आईए, अन्दर आईए।"

सुपारी का सरंजाम लेकर रत्नप्रभा अन्तःपुर की ओर चली गयीं।

कवि अन्दर आते हुए बरामदे पर ठिठक गये।

"अरे जनाब, यह क्या खून-खराबा है? छिः-छिः, क्या कर रखा है आपने?"

वैज्ञानिक बाहर आये।

"ये? ये एक रेडस्टार्ट को डिसेक्ट किया है- "

"किसलिए?"

"देखना चाहता था कि इसका सेक्स-ऑर्गन परिपक्व हुआ है या नहीं?"

"यह देखने की जरुरत ही क्या है?"

"फिर तो बहुत सारी बातें बतानी पड़ेंगी। आईए अन्दर।"

"उफ्फ! इतनी सुन्दर एक चिड़िया को चीर-फाड़ कर क्या कर डाला है आपने- बताईए भला! नाम क्या बताया?"

"रेडस्टार्ट- हिन्दी नाम थिरथिरा। इसकी दुम थर-थर काँपती रहती है साईड टू साईड। आम तौर पर चिड़िया अपनी दुम को ऊपर उठाती है, जैसे- दहियर, जबकि ये अपनी दुम को दाहिने-बाँये घुमाती हैं। और डण्ड लगाती हैं सुन्दर- "

"वो सब ठीक है, लेकिन उसके लिंग को लेकर आप इतने परेशान क्यों हो रहे हैं?"

"बताता हूँ। बैठिए तो सही।"

दोनों ने बैठकखाने में प्रवेश किया।

अमरबाबू शुरू हुए-

"चिड़ियाँ एक देश से दूसरे देश में जाती हैं, यह जानते हैं तो? हिमालय से बहुत-सी चिड़ियाँ शीतकाल में इस इलाके में आ जाती हैं। शीत बीतने के बाद चली फिर जाती हैं हिमालय में- वहीं उनकी जन्मभूमि है। वहाँ जाकर ये घोंसले बनाती हैं, अण्डे देती हैं और समय पर उन अण्डों से बच्चे होते हैं। ठण्डे इलाकों की चिड़ियाँ इन इलाकों में कभी अण्डे नहीं देतीं- यह एक रोचक तथ्य है। अण्डे देने के लिए हजार-हजार मील की दूरी अतिक्रम कर वे स्वदेश पहुँच जाती हैं। क्यों लौट जाती हैं, कैसे लौटती हैं- यह वैज्ञानिकों के बीच शोध का एक बड़ा विषय है। गॉडविन नामक एक पागल विशप की एक अद्भुत धारणा थी। वे कहते थे- चिड़ियाँ चाँद पर जाती हैं। गिल्बर्ट व्हाईट-जैसे वैज्ञानिक भी विश्वास करते थे कि जाड़े में अबाबील तालाबों के कीचड़ के नीचे जाकर सो जाती हैं। आजकल इन बातों पर कोई विश्वास नहीं करता। आजकल की थ्योरी के अनुसार, चिड़ियाँ एक देश से दूसरे देश में जाती हैं, इसका कारण रोशनी है। दिन जितना बड़ा होता है, चिड़ियों के शरीर पर रोशनी उतना ज्यादा लगती है। इस रोशनी के प्रभाव से उनका सेक्स-ऑर्गन परिपक्व हो जाता है। तब वे अपने देश लौट जाती हैं। इसे लेकर बहुत शोध हुआ है। पाया गया है कि स्टेराइल चिड़ियों में लौटने की जल्दीबाजी नहीं होती। यह भी पाया गया है कि ये चिड़ियाँ जब ठण्डे प्रदेशों से यहाँ आती हैं, तब इनके सेक्स-ऑर्गन बहुत ही अपरिपक्व होते हैं। एक शोधकर्ता ने चिड़िये के ओवरी को कृत्रिम प्रकाश में रख कर और रोशनी के प्रभाव को क्रमशः बढ़ाकर यह प्रमाणित किया है कि इससे उनके सेक्स-ऑर्गन परिपक्व हो गये। बाद में इसमें भी व्यतिक्रम पाया गया है। इसलिए मैं देख रहा था कि इस रेडस्टार्ट का सेक्स-ऑर्गन कैसा है! कई रेडस्टार्ट मैंने पकड़े भी हैं। उनको अल्ट्रा-वायोलेट में एक्सपोज करके देखूँगा कि क्या परिणाम आता है।"

"क्या परिणाम आता है- यह तो एक वैज्ञानिक देख चुके हैं, आपने बताया; फिर क्या जरुरत है?"

"विज्ञान में दूसरों को कड़वा खिलाने से काम नहीं चलता। प्रत्येक चीज का खुद परीक्षण करना पड़ता है- "

वैज्ञानिक ने हँस कर कवि की ओर देखा।

"परीक्षण करके देखना चाहते हैं कि एक प्रजाति की चिड़ियाँ शीतकाल में दूसरे देश में क्यों जाती हैं?"

"हाँ।"

"इसके लिए इतनी सुन्दर एक चिड़िया को चीर-फाड़ कर बराबर कर दिये?"

"बिलकुल। इसमें नुकसान क्या है?"

"मुझे पता है- वे क्यों जाती हैं?"

"जानते हैं?" वैज्ञानिक की आँखें कौतूहल से चमक उठीं, "क्यों, बताईए तो।"

"आकर्षण।"

"आकर्षण? व्हाट डू यू मीन? किसका आकर्षण?"

"प्राणों का आकर्षण। यह आकर्षण अनवरत चलता रहता है, देखते नहीं हैं आप? सिर्फ चिड़ियाँ ही क्यों? जब, जिस ओर से आकर्षण महसूस करते हैं, हम सब उधर ही चल पड़ते हैं। चारों तरफ देखिए- सारी दुनिया में अविराम यह आकर्षण चल रहा है। लाईए दीजिए।"

"क्या दूँ?"

"कागज-पेन्सिल।"

"क्या करना है?"

"दीजिए न।"

कवि कागज-पेन्सिल लेकर बैठ गये। वैज्ञानिक निकल गये व्यवच्छेदित रेडस्टार्ट का अध्ययन करने। उनको अभी बहुत कुछ करना था। ओवरी दोनों को फ्रिज करके माइक्रोटोम से काट कर माइक्रोस्कोप से देखना होगा। इनकी तस्वीरें खींच कर रखनी होंगी। इसके अलावे, दो छोटे-छोटे दड़बों में उन्होंने रेडस्टार्ट के दो दलों को रख रखा था। एक दल को रखा था अन्धेरे में और दूसरे को अल्ट्रावायोलेट रोशनी में। एक बार उनकी भी खोज-खबर लेनी थी। पता नहीं, चिड़ियों को भोजन दिया गया है कि नहीं। नौकर सारे तनखा तो लेंगे ढेर सारा, मगर काम कुछ नहीं करना चाहेंगे। पहली बात, जानते नहीं हैं, दूसरी बात, जानना चाहते नहीं हैं। परले दर्जे के कामचोर हैं सब। मुन्शी चिड़ियों का भोजन लेकर आया कि नहीं- इसका भी ठिकाना नहीं था। उस दिन बीटल को दिखला कर उसे समझा दिया गया था। रेडस्टार्ट चिड़ियाँ बीटल बहुत पसन्द करती हैं। इल्ली भी चाव से खाती हैं। पतंगे भी खा लेती हैं। जब ये सब न मिले, तब चींटियाँ। इन कीट-पतंगों की व्यवस्था करनी होगी। अपने देश में चिड़ियाँ पालना बहुत ही झमेले का काम है। बाजार से पैसे देकर भी इनके लिए खाद्य नहीं खरीदा जा सकता। उन देशों में मिल जाता है। इस देश में किसी से पूछने पर उत्तर मिलेगा- सत्तू खिलाईए। आश्चर्य बुद्धि है! चिड़ियाँ क्या इन्सान हैं, जो सत्तू खायेंगीं?

तेज कदमों से वे बागान के पिछले हिस्से में गये। वहाँ लकड़ी के तख्तों, काँच, लोहे की जालियों, धागे की जालों, तम्बू, इत्यादि नाना प्रकार के साजो-सामान के साथ बागान के दो हिस्सों को पेड़-पौधों सहित घेरकर दो विशाल दड़बों का रूप दे दिया गया था। जिन रेडस्टार्ट को अन्धेरे में रखना था, वह हिस्सा तम्बू से पूरी तरह ढका हुआ था। उसके अन्दर कम पावर वाला एक इलेक्ट्रिक बल्ब लगा हुआ था, जिसे सिर्फ खाना देते वक्त जलाया जाता था। पहले वे वहीं गये। तम्बू पर बाहर से कान लगाया उन्होंने। बहुत ही सावधानी के साथ। इतनी सावधानी के साथ कोई सुहागरात वाले कक्ष के दरवाजे पर भी कान नहीं लगाता। 'विट... विट... विट...' चहचहा रही थीं। चहचहाहट कारुणिक लगी। खाना मिलता है कि नहीं इन्हें? ओह, कितनी दूर आयी हैं ये बेचारी! काश्मीर अँचल में हिमालय के निकट घर है इनका। वैज्ञानिक का निष्ठुर कौतूहल क्षण भर के लिए करुणाद्र हो उठा। लेकिन यह क्षण भर के लिए ही था। अगले ही पल महसूस हुआ, पंछियों की चहचहाहट कितनी अद्भुत होती है, बहुत ही अद्भुत! हम अपने शब्दों से कभी इनका वर्णन नहीं कर सकते। 'कुहू' बोल कर क्या कोयल के कण्ठस्वर के बारे में सब कुछ समझाया जा सकता है? रेडस्टार्ट के दो 'विट' के बीच में जो एक ध्वनि है- बिना तेल वाली साइकिल के पहिए की आवाज की तरह कुछ हद तक, उसे भाषा में बिलकुल ही नहीं लिखा जा सकता। एक ही चिड़िया की एक ही पुकार को बँगलाभाषी 'चोख गेलो' (आँखें गयीं) कहते हैं; साहब लोग 'ब्रेन फीवर' कहते हैं; हिन्दीभाषी कहते हैं 'पीऊ कहाँ', और मराठीभाषी 'पाउसाला', जबकि पुकार एक ही है। अच्छा, इनके गले के स्वर का ग्राफ तैयार करना कैसा रहेगा? ...वे अन्यमनस्क हो गये। ग्राफ के बारे में ही सोचने लगे। चिड़ियों को पकड़ कर फोनोग्राफ-जैसे किसी यंत्र के सामने यदि रखा जाय, तो क्या वे चहचहाएंगी? वे मन के आनन्द से चहचहाती हैं, धर-पकड़ के बाद शायद न चहचहाएं। हालाँकि कोशिश कर के देखने में कोई हर्ज नहीं है। एक 'खट्-' आवाज के साथ वैज्ञानिक ने सिर घुमा कर देखा, मुन्शी खड़ा था।

"क्यों रे, चिड़ियों को खिलाया था?"

"हाँ बाबू, लेकिन कल से मुझसे नहीं हो पायेगा हुजूर। मल्लिकबाबू आज मुझे मारने के लिए दौड़े आये थे। उनके बागान में और नहीं जाऊँगा।"

"उनके बागान में जाते ही क्यों हो? हमारा अपना तो कितना बड़ा बागान है-"

"हमारे बागान में छोटे-छोटे पतंगे कहाँ हैं?"

"नहीं हैं?"

"नहीं।"

अचानक यह समस्या बहुत जटिल महसूस हुई उनको। उनके अपने बागान में पतंगे नहीं हैं, मल्लिक बाबू पतंगे पकड़ने नहीं देंगे, पैसे देकर बाजार से पतंगे खरीदे नहीं जा सकते... यह तो महामुश्किल हो गया। चिड़ियों को अन्त में छोड़ देना पड़ेगा क्या? नहीं, यह कैसे हो सकता है...!

"हमारे बागान में पतंगे बिलकुल नहीं हैं?"

"होंगे, दो-चार- "

"ठीक से खोजे हो?"

"बहुत खोजा हूँ हुजूर।"

वैज्ञानिक भौंहें सिकोड़े खड़े रहे। तिरछी नजरों से एक बार उनकी तरफ देखकर मुन्शी खिसक गया। सनकी पागल आदमी, जाने कब क्या बोल बैठे? अमरबाबू ने एक बार फिर कान लगाकर सुना- 'विट- विट- विट- ' पुकार तो रही थी। इस मल्लिक को अब किस तरह राजी किया जाय? वे क्यों इस तरह अकारण नाराज हो रहे थे- समझना मुश्किल था। उनके यहाँ शाम के समय ताश खेलने का जो अड्डा जमता था, उसमें शामिल होने के लिए दो-एक बार बुलावा आया था, लेकिन अमरबाबू नहीं गये थे। किसी और कारण से नहीं, उन्हें ताश खेलना नहीं आता इसलिए। एक बार कीर्तन करने वालों का एक दल आया था उनके यहाँ। सुनने जाने के लिए निमंत्रण मिला था। उस बार भी नहीं गये थे। कीर्तन-वीर्तन उन्हें बिलकुल पसन्द नहीं। ऐसा लगता है, मृदंग बजाकर अकारण ही कुछ लोग गान के नाम पर हुल्लड़ मचा रहे हैं। कहीं इन्हीं कारणों से तो वे नाराज नहीं हो गये हैं? हो सकता है। यह तो अन्याय हुआ, घोर अन्याय। वे क्या चाहते हैं कि पसन्द न आने के बावजूद मैं उनके साथ बैठकर ताश खेलूँ और कीर्तन सुनूँ? नहीं तो वे मेरी चिड़ियों का भोजन बन्द कर देंगे? अन्याय-घोर अन्याय। ऐसी ही बातें सोचते-सोचते वे तेज कदमों से लौट रहे थे।

वे लगातार यही सोच रहे थे कि मल्लिक को कैसे राजी किया जाय। नाना प्रकार के उपाय के बारे में वे सोच रहे थे, लेकिन जिस मोक्षम उपाय का अवलम्बन करने से अविलम्ब सब ठीक हो सकता था, वह उनकी कल्पना से बाहर था। श्रीयुत् सनातन मल्लिक उन्हीं के कर्मचारी थे। उनकी हरिपुरा जमीन्दारी के मैनेजर थे वे। जिस बागान में मुन्शी को प्रवेश नहीं मिला था, वह बेशक, उनकी निजी सम्पत्ति थी। अगर अमरबाबू एक पत्र लिख कर एक

अनुरोध कर देते, तो सब ठीक हो जाता। लेकिन ऐसा कुछ लिखने के बारे में उन्होंने सोचा ही नहीं। मालिक होने का फायदा उठाते हुए मल्लिक के बागान में उनकी इच्छा के विरुद्ध आदमी भेज कर कीट-पतंगें संग्रह करवायेंगे वे- यह उनके लिए कल्पनातीत बात थी। मल्लिक के व्यवहार से क्षुब्ध होकर वे सिर्फ यही सोच रहे थे कि आखिर यह सब करने का मतलब क्या है? शायद पक्षियों पर उनकी गवेषणा के बारे में उन्हें ठीक से जानकारी न हो। शायद वे सोच रहे हों- बचपना है यह सब। चिड़ियों की यह यह वार्षिक गतिविधि कितनी रहस्यमयी है- इसे एक बार समझा कर बताने के बाद वे शायद आपत्ति न करें। चिड़ियाँ किसके आकर्षण में एक देश से दूसरे देशों में जाती हैं- इसकी अगर सही-सही जानकारी मिल जाय, तो विज्ञान-जगत में हलचल मच जायेगी। इस विषय पर दुनिया के कितने बड़े-बड़े वैज्ञानिक सिर खपा रहे हैं, कितनों को तो गवेषणा करने का अवसर ही नहीं मिल रहा, और ये जनाब हैं कि अपने बागान से कीट-पतंगें नहीं पकड़ने देंगे- यह भला कौन-सी बात हुई? जरूर, विषय की गम्भीरता नहीं समझ पा रहे हैं वे। या फिर, हो सकता है कि मुन्शी ने किसी पेड़-पौधे पर हाथ लगा दिया हो। कुछ भी हो सकता है... ।

अचानक वे ठिठक गये। मल्लिक-प्रसंग बिलकुल भूल गये वे। थोड़ी दूरी पर घास पर एक पंख पड़ा हुआ था। प्रायः दौड़ते हुए जाकर उठाया उसे। दोयेल-दहियर चिड़िये का पंख। हाँ, वही तो था- सफेद-काला। बहुत-सी चिड़ियों के पंखों का संग्रह था उनके पास, लेकिन दहियर का पंख अभी तक नहीं मिला था उन्हें। उनका यह संग्रह इस तरह का था कि इसमें जितने भी पंख थे, सब पाये हुए थे। एक दूसरा संग्रह भी था उनका, जिसमें चिड़ियों को मारकर उनके शरीर से पंख उखाड़ कर जमा किये गये थे- प्राइमरी, सेकण्डरी-जैसे वैज्ञानिक श्रेणियों में विभक्त करते हुए। जमीन पर पड़े हुए पंखों को पाने का आकर्षण और विस्मय अलग ही होता है। विभिन्न चिड़ियों के अण्डों का भी संग्रह बना रखा था उन्होंने, लेकिन अचानक जमीन पर गिरे हुए पंख को पाकर उन्हें जो आनन्द मिलता था, वह किसी और में नहीं मिलता था। पहले कभी दहियर का पंख नहीं मिला था उन्हें। खुश होकर वे घर की ओर भागे। रत्ना को दिखाना होगा। घर में आते ही कवि से भेंट हुई। कवि बैठकखाने में बैठे हुए थे- यह बात वे भूल ही गये थे।

"सुनिए... ।"

"क्या?"

"कविता। एक देश से दूसरे देश में क्यों यह आना-जाना लगा रहता है, उसी की कविता।"

"पढ़िए।"

कवि ने पढ़ना शुरू किया-

धूल-धूसरित धरा की सतह पर
लक्ष योजन दूर से सूर्य
प्रकाश भेजता किसके आकर्षण में
(कुल 34 पंक्तियों की कविता)

कविता समाप्त कर कवि देखते रहे चेहरे पर मुस्कान लिये।

वैज्ञानिक कुछ कहने जा रहे थे, उन्हें रोककर कवि बोले, "और एक विचित्र बात हुई।"

"क्या?"

"रवि ठाकुर के आकर्षण में अनजाने में ही उनकी 'लिपि' कविता का भाव चुरा लिया है मैंने।"

वैज्ञानिक बोले, "इसे ठीक-ठीक चोरी नहीं कहते। कविता बहुत अच्छी बन पड़ी है आपकी। एक बात लेकिन याद रखिएगा, कविता विज्ञान नहीं है। आप जिस आकर्षण से आह्लादित हो रहे हैं, वैज्ञानिकों का काम उसी आकर्षण का कारण निर्धारित करना है- तर्कसंगत व्याख्या के साथ। सूर्य क्यों पृथ्वी की ओर अपना प्रकाश भेजता है और पृथ्वी से आकाश की ओर इतने गीत, गन्ध, गुंजन क्यों उठते हैं- इनके बहुत-से कारण विज्ञान ने खोज निकाले हैं। बहुतों का कारण अभी नहीं खोजा जा सका है, लेकिन एक दिन खोज लिया जायेगा।"

वैज्ञानिक के इस बाल-सुलभ आत्म-प्रत्यय से कवि के चेहरे पर अनुकम्पा की हँसी खेल गयी। प्रतिवाद नहीं किया उन्होंने। क्या होगा प्रतिवाद करके! उनके मन में सिर्फ कविता की तीन पंक्तियाँ गुनगुना उठीं-

कौन चतुरिका किस पथ से आती
कहाँ जाती कितनी छलना
इसका कितना जानते हो बोलो न!

शायद व्यंग्योक्ति करते एक, लेकिन बाधा पड़ गयी। दरवाजे पर तीन नौकरों का आविर्भाव हुआ। दो के हाथों में खाद्य-सामग्रियाँ, एक के हाथों में चाय की ट्रे और पीछे रत्नप्रभा। गम्भीर भाव से दोनों के सामने खाद्य-सामग्रियाँ सजाकर वे पास के टेबल पर चाय छानने लगीं खड़ी होकर। बातचीत कुछ नहीं। भूखे बालक

के समान वैज्ञानिक खाने में जुट गये। दो रसगुल्ले मुँह में डालकर उन्हें निगलने से पहले ही एक कचौड़ी को खाना शुरू कर दिया उन्होंने। कवि इस समय खाने के लिए तैयार नहीं थे- यह समय उनके खाने का नहीं था, लेकिन इतने सारे रसीले व्यंजनों की अवहेलना करने से रसबोध का ही अपमान होगा- इस तरह का एक मनोभाव लेकर और साथ ही, शिल्पी-जनोचित शिष्टता के साथ वे अग्रसर हुए।

रत्नप्रभा ने दोनों के सामने चाय की प्यालियाँ रखीं। उसी समय अचानक वैज्ञानिक को एक बात याद आ गयी। चाय के साथ स्टोव का और स्टोव के साथ किरासन तेल के अविच्छेद्य सम्बन्ध के कारण ही सम्भवतः उन्हें अपनी विस्मृत बात की याद आयी।

"ओह, छिः-छिः, कितने बज गये?"

कुर्सी खिसका कर वे खड़े हो गये और रत्नप्रभा की ओर अपराधी भाव से ताकने लगे। बर्द्धमान शहर के बाहर ऐसा स्वादिष्ट सीताभोग मिलना भला कैसे सम्भव है- कवि यही सोच रहे थे; उनकी चिन्ताधारा वैज्ञानिक की हरकत से टूट गयी।

(बँगाल के शहर बर्द्धमान के दो मिष्टान्न बहुत प्रसिद्ध हैं- मिहिदाना और सीताभोग।)

"अब क्या हुआ आपको?" थोड़ी झुंझलाहट के साथ प्रश्न किया उन्होंने।

"केरोसिन के परमिट के लिए एक आदमी भेजने की बात थी। छिः-छिः, भूल ही गया था बिलकुल।"

"आदमी भेज कर परमिट मँगवा लिया है मैंने।" अपनी थरथराती आवाज में रत्नप्रभा बोलीं।

"ऐसा? वाह, चार सिंघाड़ा खिला दो फिर तो।"

(सिंघाड़ा, यानि समोसा।)

कवि भी बोल पड़े, "ओ-हो, मैंने भी यह क्या कर डाला! मेरे घर में कोयला बिलकुल नहीं है। आज चूल्हा नहीं जलेगा। आपके यहाँ से थोड़ा कोयला मिल जाय- इसी आशा के साथ मैं घर से निकला था।"

वैज्ञानिक ने रत्नप्रभा की ओर देखा, रत्नप्रभा बोलीं, "हमारे पास कुछ ज्यादा कोयला है, मैं व्यवस्था कर देती हूँ।" कह कर वे निकल गयीं।

इसी के साथ बाहर से रूपचँद की आवाज सुनायी पड़ी-

"आनन्द है क्या यहाँ?"

"हाँ, यहीं हूँ, आओ।"

रूपचँद मौलिक ने प्रवेश किया। गले में चादर लपेटे, बगल में एक पैकेट दबाये। आकर कवि पर एक नजर डालकर एक कुर्सी खींचकर वे बैठ गये। फिर सिर घुमाकर देखा, बगल के टेबल पर चाय का सरंजाम रखा हुआ था। उठकर खुद ही एक कप चाय छान लिया उन्होंने। चाय की बड़ी-सी चुस्की लेने के बाद कवि पर फिर एक नजर डालकर वे बोले, "इस तरह कितने दिन चलाओगे, बोलो तो आनन्द?"

"किस तरह?"

"परिवार को चूल्हे के पास बैठाकर कोयला लाने जा रहा हूँ कहकर घर से निकले हो प्रायः दो घण्टे पहले ...और यहाँ बैठकर मजे से रसगुल्ले उड़ा रहे हो। तुम्हारे चलते ही मैं दफ्तर से अभी तक घर नहीं जा पाया हूँ। रास्ते में ही तुम्हारी नौकरानी से भेंट हो गयी, वह तुम्हें चारों तरफ खोजती फिर रही थी। उसी के मुँह से सुना सब।"

"फिर?"

"फिर क्या! गया बैजूमल के पास। चार मन कोयला भेजवा दिया है। कोयला लेकर आने के बाद भी देखा, तुम नहीं लौटे हो। तब समझ में आया, जरूर चिड़ियाँ के चक्कर में हो। वैज्ञानिक महोदय के साथ मेरा भी एक काम है, इसलिए सीधा यहाँ चला आया। अभी तक घर नहीं गया हूँ।"

वैज्ञानिक की आँखों में एक प्रश्न उभरा सिर्फ। वास्तव में, वे इस वक्त बोल पाने की स्थिति में नहीं थे। आखिरी सिंघाड़े को मुँह में भरकर उसे चबा रहे थे वे। कवि मुस्कुराते हुए प्रसन्न दृष्टि से रूपचँद को देख रहे थे। इस दृष्टि का अर्थ था- अपना कर्तव्य तुमने पूरा किया, अब इसमें कहने को क्या रखा है?

"छह रुपये, बारह आना लगे हैं। छह रुपये कोयले का दाम और बारह आना कुली। पैसे देना मत भूल जाना। लेकिन तुम्हें बोलना व्यर्थ है। मैं ही मँगवा लूँगा तुम्हारी घरवाली से।"

एक घूँट चाय से मुखविवर को साफ कर वैज्ञानिक ने हाँक लगायी, "अरे कोई है?"

कम उम्र का एक नौकर आकर खड़ा हुआ।

"और एक प्लेट नाश्ता ले आओ। कहना रूपचँदबाबू आये हैं।"

"काम की बात कर लूँ पहले- " रूपचँदबाबू शुरू हुए।

"क्या बात?"

"सब्जीबाग में नदी किनारे आपका एक मकान है, वह दीजिएगा मुझे?"

"वह तो खण्डहर हो रहा है।"

"कोई एक कमरा ठीक-ठाक होने से भी चलेगा। उसी लड़की के लिए- "

"वह लड़की अभी तक यहीं है, कौन है वह बताईए तो?" कवि बोल पड़े। उनकी आँखें चमक रही थीं।

"वे रह सकती हैं वहाँ, कोई आपत्ति नहीं है। लेकिन- "

थोड़ा सकुचा कर वैज्ञानिक रूक गये।

"लेकिन क्या, खुल के कहिए न। बस्ती के बाहर आपके उस खण्डहरनुमा मकान में रहना किसी के भी लिए ऐसे ही मुश्किल है, लेकिन वह लड़की बिलकुल निराश्रय हो गयी है। धर्मशाला में दो दिनों से ज्यादा तो ठहरने देंगे नहीं।"

"खण्डहर के चलते ही वह मेरे लिए ज्यादा जरूरी है। उस मकान के पास बाँस-झाड़ है। वहीं एक 'केटुपा' देखा था मैंने एकदिन... । वहाँ मैं बीच-बीच में जाता हूँ रात के समय।"

"यह केटुपा क्या बला है?"

"हुतुम पेंचा यानि मच्छेरा उल्लू।"

रूपचँद अपलक कुछ देर देखते रह गये वैज्ञानिक की ओर, उनकी दृष्टि में कौतुक चमक रहा था।

फिर वे बोले, "अच्छी बात है, आपको जब जाना हो, जाईएगा वहाँ।"

"वे कोई आपत्ति नहीं करेंगी इसमें?"

"बिलकुल नहीं।"

"लड़की है कौन, कहाँ से आयी है?" कवि ने फिर अपना प्रश्न दुहराया।

रहस्यमयी दृष्टि से देखते हुए रूपचँद कुछ पल चुप रहे, फिर बोले, "बर्मा रिफ्यूजी।"

वैज्ञानिक उठके जाकर दहियर के पंख को अपने संग्रह में रखने जा रहे थे। रखते हुए तन्मय होकर खड़े हो गये। नीलकण्ठ के पंख ने उन्हें मानो विस्मित कर दिया था। पाराडाईज फ्लाईकैचर- दूधराज का लम्बा पंख भी था उनके संग्रह में। उसकी ओर भी स्नेह से देख रहे थे वे बीच-बीच में। उस अद्भुत पक्षी-दम्पत्ति को वे मानो देख पा रहे थे आँखों के सामने। हिन्दी नाम भी उसके कितने शानदार हैं- दूधराज और शाह बुलबुल। उन्हें सीधे राजा-रानी या बादशाह-बेगम कहने से और भी अच्छा रहता। आलमारी के सामने खड़े-खड़े एक-एक कर

सारे पंखों को देखने लगे वे- घूघू, गिद्ध, शिकरा, तोता, बटेर, तीतर... इत्यादि-इत्यादि।

कवि ने पूछा, "बर्मा-रिफ्यूजी मतलब? खुल के बताओ न।"

"मतलब जापानियों के डर से बर्मा से भाग आयी है। रास्ते में माँ, पिता, भाई, बहन- सभी मारे गये। आसाम के जंगलों में वे डकैतों के हाथ लग गये थे। सिर्फ यह लड़की जिन्दा बची! अपने आभूषण बेचते-बेचते वह यहाँ तक आ पहुँची है। रात जहाजघाट पर उतरी थी। धर्मशाला खोजते-खोजते गलती से शहर के बाहर पहुँच गयी। सुबह जब तुम लोग चिड़ियाँ देख रहे थे, तब मैं खजूर रस की तलाश में जा रहा था। देखा, बगीचे के किनारे पुलिया पर मुँह लटकाये बैठी थी। बगीचे के दूसरी तरफ शिबू मित्तिर रहता है, उसी के पास गिलास लाने जा रहा था। लौटते समय देखा, तब भी बैठी हुई थी। बढ़कर परिचय लिया मैंने। उसके बाद तो जानते ही हैं सब- "

कवि ने कहा, "ओह, लड़की तो घोर विपत्ति में है।"

कवि का मन वास्तव में भारी हो गया। रूपचँद निर्लिप्त भाव से चाय पीने लगे। एक और प्लेट नाश्ता आ गया।

कवि ने फिर पूछा, "लड़की यहीं रहेगी क्या?"

रूपचँद ने प्रश्न को अनसुना कर दिया। ऐसा लगा, इस विषय पर कवि के साथ बात करने के लिए वे ज्यादा इच्छुक नहीं थे। कवि भी कहाँ छोड़ने वाले थे।

"लड़की यहीं रहेगी क्या?"

रूपचँद को जवाब देना पड़ा, "अब यह मैं केसे बताऊँ?"

"इस देश में उसका कोई नाते-रिश्तेदार है?"

"नहीं पता। मुझे उसने रोते हुए यही कहा कि मैं उसके लिए आश्रय की एक व्यवस्था कर दूँ। वही कोशिश कर रहा हूँ। आगे क्या होगा, कौन जाने?"

"उस खण्डहरनुमा मकान में वह अकेले रह सकेगी?"

"सवाल ही नहीं उठता।"

"फिर उसके साथ कौन रहेगा?"

रूपचँद ने फिर जवाब नहीं दिया। आराम से कचौड़ी चबाने लगे। बात और भी दब गयी, क्योंकि वैज्ञानिक ने लौट के आकर रूपचँद का पैकेट हाथ में लेकर पूछा, "इसमें क्या है?"

"वो- एक साड़ी है।"